2. गांधीवाद और समाजवाद

एक महान व्यक्ति, यदि वह आधी सदी से ज्यादा समय तक सार्वजनिक जीवन से जुड़ा रहा हो, विरोधाभासपूर्ण वक्तव्य दे सकता है। महात्मा गांधी ने भी अपनी असाधारण अंतर्दृष्टि के बावजूद ब्रिटिश साम्राज्यवाद, जाति-व्यवस्था पूंजी-श्रम संबंधों आदि के संबंध में कुछ परस्पर विरोधी बातें कही हैं।

जाति-व्यवस्था को धर्म का अंग मानने की मनःस्थिति से वे जाति-व्यवस्था को पाप कहने की स्थिति में आए। कभी उनका विश्वास था कि ब्रिटिश साम्राज्य अच्छा काम कर रहा है और अंत में इस सीमा तक गए कि उसे शैतानी कहने लगे। इसी प्रकार निजी संपत्ति की पवित्रता के विश्वास से शुरू कर इस स्थिति पर आ गए कि जमींदारी प्रथा को बिना मुआवजे के खत्म करने की वकालत करने लगे।

ये वक्तव्य एक-दूसरे के इतने विरोधी हैं कि यदि ये किसी और व्यक्ति से आए होते तो उस पर विचारों की अस्थिरता का आरोप लगता। अतः हमें चाहिए कि हम महात्मा गांधी के कुछ विशिष्ट कथनों की जांच करें ताकि हम उनका सार पूरे परिप्रेक्ष्य में समझ सकें तथा उन्हें भविष्य में उपस्थित ऐसी ही स्थितियों पर लागू कर सकें और संभव हो तो देख सकें कि उनकी कथनी-करनी में कितना सातत्य रहा। इस बात की कल्पना करना भी जरूरी है कि भिन्न प्रकार की स्थितियों में वे क्या करते। उनके पहले के लेखन में व्यक्त उनकी इच्छाओं तथा विकास के क्रम में बाद में समय-समय पर कही गई बातों में अनेक विरोधाभास मिल सकते हैं।

गांधीजी बुद्ध और ईसा की तुलना में अधिक स्पष्ट थे जिनके कथनों के व्यक्तियों द्वारा वातावरण के अनुसार विभिन्न अर्थ लगाए गए हैं। साथ ही गांधी कार्ल मार्क्स की तुलना में अधिक सामान्यीकरण करते थे जिनके लेखों ने बाकायदा एक प्रणाली की रचना की। दूसरे शब्दों में, गांधी पैगंबर से अधिक स्पष्ट और दार्शनिक से अधिक सामान्यीकरण करने वाले थे। इसके अलावा उनका एकमात्र निबंध जिसमें उन्होंने अपने विचार व्यवस्थित रूप से व्यक्त किए, *हिंद स्वराज* नाम पुस्तक है जिसे किसी भी समय बहुत ज्यादा लोगों ने नहीं पढ़ा। महात्मा गांधी ने देश-विदेश के अपनी पीढ़ी के लोगों को अपने लेखन, विशेषकर व्यवस्थित लेखन, से इतना प्रभावित नहीं किया जितना कि अपने काम तथा आचरण से तथा उसके सहायक

पाठ स्वरूप कही गई बातों से। ऐसे व्यक्ति भी होते हैं जिनका कहा हुआ और लिखा हुआ ही ज्यादा महत्वपूर्ण होता है और उनके जीवन का गौण संदर्भ होता है। महात्मा गांधी ने भी बहुत लिखा और बहुत बोला, लेकिन वह सब उनके जीवन और आचरण पर टिप्पणी मात्र है।

अतः उनके जीवन का सार जानने के लिए हमें उनके जीवन तथा कर्म की ओर देखना चाहिए और उनके लिखे तथा कहे को सहायक पाठ के रूप में लेना चाहिए। किंतु उनके कामों से किसी प्रकार की प्रणाली तैयार करने की कोशिश भी की जानी चाहिए। इस प्रकार के व्यक्ति कम नहीं हैं। गांधीवाद और गांधीवादी हमारे देश में काफी आकर्षक शब्द हैं। किंतु गांधी के विचारों के एक प्रणाली बनने में समय लगेगा, अभी तो वह नहीं है। मैं नहीं जानता कि वह कैसे बनेगी, किंतु इसकी आवश्यकता असंदिग्ध है और यह गांधी जी के जीवन के तर्क पर आधारित होगी।

विश्व इस समय दो विचार-प्रणालियों के चंगुल में है और तीसरी प्रणाली बनने की प्रक्रिया में है। पूंजीवाद और साम्यवाद पूर्ण विकसित प्रणालियां हैं और सारी दुनिया पर इनकी पकड़ है और इसका परिणाम है गरीबी, युद्ध और भय। तीसरा विचार भी विश्वमंच पर अपनी उपस्थिति दर्ज कर रहा है। यह अधूरा है, पूरी तरह विकसित नहीं है किंतु खुला है। खुली विचार-प्रणाली में सत्य और प्रगति की गुंजाइश बनी रहती है जबकि बंद प्रणाली तथ्यों की हिंसा करती है और उन्हें दूर रखना चाहती है ताकि उनकी व्यर्थता सिद्ध की जा सके। खुली प्रणालियां तथ्यों के अनुरूप जिंदा रहती हैं और हम उम्मीद करते हैं कि ऐसी प्रणालियां जड़ अथवा परिवर्तनशील स्थितियों के साथ अपने में नई प्राण-शक्ति भरती रहेंगी। यह विचार समाजवादी विचार है। गांधीवाद की नई सिद्धांत-प्रणाली विकसित करने के बजाय यह अधिक वांछनीय है कि गांधीज़ी के जीवन और कार्यों की सार अंतर्वस्तु को इस विचार-प्रणाली में लाया जाए जो इस समय विश्व के मंच पर उपस्थित है। जहां तक पूंजीवाद और साम्यवाद का संबंध है, इन्हें प्रभावित नहीं किया जा सकता क्योंकि ये प्रणालियां बंद हो चुकी हैं। किंतु समाजवाद के लिए गांधी जी के कार्य एक फिल्टर का काम कर सकते हैं जिनसे छन वह कचरे से बच सकता है अथवा गांधी के कार्य ऐसे प्रभाव का काम कर सकते हैं जिसका रंग समाजवाद में आ सकता है। मुझे इसकी खुशी होगी अगर गांधीजी के विचारों का प्रभाव अन्य दो प्रणालियों पर भी पड़े किंतु इसमें शक की पूरी गुंजाइश है। गांधी जी के कामों का स्पष्ट मूल्य किन बातों में है?

दुनिया में अन्याय का प्रतिकार करने वाले व्यक्ति कम नहीं हुए। यदि हमारे देश ने बर्बर क्रूरता देखी है तो उसने अन्याय के प्रतिकार की वीरता भी देखी है। तो फिर दुनिया के लोग शांति और राहत के लिए उसी का नाम क्यों लेते हैं? इसका स्पष्टीकरण साफ है। आधुनिक विश्व में संगठन इतने व्यापक प्रभाव वाले और शक्तिशाली बन गए हैं कि व्यक्ति पूर्ण रूप से उनका गुलाम बन गया है। आधुनिक सभ्यता का उद्गम जहां भी हुआ हो, आज यह सभ्यता समूह की सभ्यता बन गई है जिसमें व्यक्ति मात्र एक संख्या है और इसकी उपयोगिता समूह

का अंश होने में ही है। यूरोप भी अन्याय का प्रतिकार करता है लेकिन तभी जब संगठन होता है। यूरोपियनों ने प्रतिकार के महान कार्य किए हैं किंतु तभी जब उन्हें संगठन की मदद मिली और मैं इसमें हथियार भी जोड़ना चाहूंगा। यूरोप में व्यक्ति अपने को लाचार पाता है; वह बिना मदद के प्रतिकार नहीं कर सकता। अक्सर वह अकेला होता है चारों तरफ से शत्रुओं से घिरा हुआ और जब उपयुक्त संगठन नहीं होता तो वह चूहा बन जाता है।

जब जर्मनी में हिटलर सत्ता में आया तो बड़ी आसानी से देखा जा सकता था कि सोशलिस्ट और कम्युनिस्ट पार्टियों के बहादुर साहसी और विचारशील लोग अपना सारा पौरुष खो बैठे और (मुझे इस शब्द का प्रयोग करने का खेद है) चूहों की तरह इधर-उधर छिपने लगे। आधुनिक सभ्यता में संगठन और हथियारों से रहित व्यक्ति नगण्य होते हैं। इसी आधुनिक सभ्यता की पृष्ठभूमि में महात्मा गांधी आए और उन्होंने कहा कि अगर तुम्हारे पास संगठन और हथियार नहीं भी हैं तो भी तुम्हारे भीतर एक चीज है जिससे तुम अन्याय और अत्याचार का प्रतिकार कर सकते हो और बहादुरी से कष्ट झेल सकते हो। गांधीजी के जीवन के अंतिम तीस वर्षों में यही वह विचित्र और शक्तिशाली गुण था जिसने आधुनिक विश्व के आदमी को आकर्षित किया और उसे यह यकीन दिलाया कि भविष्य में नई दुनिया के बीज विद्यमान हैं।

गांधीजी में अन्य गुण भी थे जिनकी मैं अभी विस्तार से चर्चा नहीं करूंगा। ये गुण हैं जो किसी महिला को जो अपना पुत्र खो चुकी है या किसी पुरुष को जो अपनी प्रेमिका खो चुका है, सांत्वना दे सकते थे। यह बहुत ही विचित्र बात है, लेकिन है। सभी दुखियों और कष्टपीड़ित लोगों को उस व्यक्ति में राहत मिली और जब व्यक्ति संसार से विदा हुआ तो विश्व के लाखों-करोड़ों लोगों के हृदय से जो शोक का सागर उमड़ा वह शायद कभी नहीं देखा गया था। पेरिस, न्यूयॉर्क, बर्लिन और शायद मास्को से भी (हालांकि उनसे हमारा परिचय नहीं था) मिली छोटी-छोटी खबरें-कहानियां बताती हैं कि कैसे टैक्सी वाले, कुली, मजदूर, किसान और स्कूल-अध्यापक को दुनिया में गांधी की अनुपस्थिति का अहसास हुआ।

यह गुण जो व्यक्ति को किसी मदद के बिना अन्याय का विरोध करने की क्षमता देता है, महात्मा गांधी के जीवन और कार्यों की महानतम विशेषता थी।

इस जगह कुछ लोग साध्य और साधनों के बारे में सोचना चाहेंगे। साध्य-साधनों का सिद्धांत निश्चय ही गांधीजी के कार्यों की सबसे बड़ी विशेषता है। दार्शनिक जॉन डेवी के अनुसार साध्य और साधनों में अदला-बदली हो सकती है। साधन अल्पकालिक साध्य हैं और साध्य दीर्घकालिक साधन। व्यक्ति अपने इच्छित लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए जो भी तरीके अपनाता है वह दीर्घकाल में साध्य बन जाता है और जो लक्ष्य वह प्राप्त करना चाहता है, यदि वह बुद्धिमत्ता से काम करे तो साधन ही लक्ष्य बन जाते हैं। सच की जीत झूठ से नहीं हो सकती। हत्या से स्वास्थ्य की, राष्ट्रीय स्वतंत्रता की कुर्बानी से एक विश्व की, तानाशाही से लोकतंत्र की प्राप्ति नहीं हो सकती। ये बहुत स्पष्ट प्रस्थापनाएं हैं क्योंकि अपनाए गए साधन अल्पकालिक साध्य होते हैं और यदि कोई प्रणाली ऐसा मानती या करती है कि तात्कालिक तानाशाही या स्वतंत्रता की कुर्बानी या झूठ, इनके विपरीत की जीत लाएंगी तो यह सरल और

पर्याप्त स्पष्ट इस स्थापना के विरुद्ध होगा कि आदमी वर्तमान में जो भी करता है उसका जोड़ भी भविष्य में उसे प्राप्त होता है। इसे सिद्ध करने के लिए किसी विशेष तर्क की जरूरत नहीं है। साधन और साध्य में पूरी तरह अदला-बदली न होती हो किंतु उनमें ऐसा अंतर्संबंध तो होता है कि विलोम विलोम ही बना रहता है, उनका परस्पर मिलन नहीं होता। यही कारण है कि गांधीजी कहा करते थे मेरे लिए एक कदम काफी है। यह 'एक कदम' का सिद्धांत साध्य-साधन के सिद्धांत से जुड़ता है और शायद यह दूसरे सिद्धांत से भी बढ़कर है।

दुनिया इस समय भविष्य के बारे में और उसके लक्ष्यों के बारे में इतना ज्यादा सोचती है कि वर्तमान को बलि पर चढ़ा दिया जाता है। आदमी अपने तात्कालिक कदम की तरफ पर्याप्त ध्यान नहीं देता। इसका परिणाम है कि एक सामूहिक जीवन में एक प्रकार की रहस्यात्मकता प्रवेश कर रही है। जब यह पूछा जाता है कि कोई तात्कालिक कदम अपने लक्ष्य से किस प्रकार संबंधित है तो जवाब मिलता है, 'अगले कदम का इंतजार करो' और जब उसका इंतजार भी हो चुकता है तो और अगले कदम की प्रतीक्षा करने को कहा जाता है। यह सिलसिला लंबा ही होता जाता है और किसी भी एक काम का औचित्य सिद्ध नहीं होता। औचित्य क्रमशः अगले कदम पर निर्भर करता जाता है और सत्य तथा शांति के नाम पर दुष्टता बढ़ती जाती है। जिस सीमा तक दुनिया ने 'एक कदम पर्याप्त' का सबक भुला दिया, उस सीमा तक उसने दुष्ट ताकतों के आगे समर्पण किया है। मैं इन दुष्ट शक्तियों के लिए या इन्हें आप जो भी नाम दें, रहस्यात्मक शब्द का प्रयोग नहीं करना चाहता, 'रहस्य' अच्छा शब्द है। ये प्रणालियां अपने को विज्ञान और तर्क पर आधारित कहती हैं। मेरे कहने का यह अभिप्राय नहीं है कि जो तात्कालिकता के सिद्धांत को मानते हैं उन्हें साध्य या अंतिम लक्ष्य के प्रति जागरूक नहीं रहना चाहिए। तात्कालिक कदम दूरस्थ लक्ष्य से संबंधित होना चाहिए लेकिन इसे अस्थायी स्थिति मान कर, जिस पर ध्यान देने की जरूरत न हो, नहीं चलना चाहिए।

इस बात का खतरा होता है कि जो तात्कालिकता के सिद्धांत को मानकर चलते हैं, वे अंतिम लक्ष्य को ही भूंल जाएं। यह दृष्टि भी उतनी ही खतरनाक है जितनी कि तात्कालिकता की तरफ ध्यान न देने की भ्रांत दृष्टि। कभी-कभी जब मैं गांधी जी के बारे में सोचता हूं तो वे मुझे एक बिंब के रूप में दिखाई देते हैं; ऊपर-ऊपर जाते कदमों की लंबी शृंखला जो एक निर्दिष्ट दिशा में बढ़ रहे हों किंतु जिसका ऊपरी सिरा अभी तक पूरी तरह न बना हो; ऊपर-ऊपर जाता आदमी, सावधान और मजबूत कदमों के साथ और अपने पीछे लाखों देशवासियों को ले जाते हुए; 'एक कदम मेरे लिए काफी है' कहते हुए।

कुछ पार्टियां और धर्म ऐसे हैं जिन्होंने अंतिम मंजिल का पूरा विचार बना लिया है और वे अपने तात्कालिक कदमों का संबंध अंतिम लक्ष्य से बिठाने में संभवतः काफी बेहतर स्थिति में हैं। वे कभी-कभी अपनी मंजिल की ओर इतनी तेजी से भागते हैं कि उनके लाखों-करोड़ों अनुयायी उनके पीछे नहीं चल पाते। किंतु एक सिद्धांत यह है जिस पर न सिर्फ महान आदमी चल सकता है बल्कि लाखों लोग भी उसके साथ-साथ, एक-एक सीढ़ी विशिष्ट दिशा में चढ़ते

जाते हैं। गांधी के बारे में सोचने पर यह बिंब मेरे मन में कभी-कभी बनता है। लेकिन सभी बिंब चूंकि अस्थायी होते हैं, इसे भी पूर्ण रूप से पर्याप्त नहीं माना जा सकता क्योंकि ऐसे मौके भी हो सकते हैं जब गांधी ने जैसा किया उससे अलग करना चाहिए था। जब कोई महात्मा गांधी जैसे व्यक्ति के बारे में सोचता है तो वह आदर्श को यथार्थ मानने की भ्रांति में पड़ सकता है और मैं आप लोगों के आगे स्वीकार करना चाहता हूं कि मैंने भी गांधी जी को कभी-कभी कम्युनिस्ट या कैथलिक की तरह देखा। कम्युनिस्ट वह होता है जो अपने आदर्श को एक विशेष व्यक्ति या देश या विशेष युग में मान लेता है जिससे उसकी समीक्षात्मक क्षमता (विवेक की शक्ति) खत्म हो जाती है और वह अपने मूर्तिमान आदर्श की गलतियों को भी नहीं देख पाता है। मैंने कभी-कभी कम्युनिस्ट मन में झांकने की कोशिश की है और अंत में उसमें तब सफल हुआ जब मैं गांधी जी को लेकर स्वयं अपने में झांका। मुझे नहीं लगता कि मैंने इस स्थिति से अपने को पूरी तरह मुक्त कर लिया है। बिना विचार की निष्ठा के कुछ तत्व अब भी होंगे क्योंकि कोई भी निष्ठा ऐसे तत्वों से पूर्ण मुक्त नहीं हो सकती। तथापि, मैं आप लोगों को इस खतरे के प्रति सावधान करना चाहता हूं। सौभाग्य से, ऐसे दो या तीन मौके ही आए जब मैंने यह गलती की क्योंकि मैंने यथार्थ और आदर्श को गड्डमड्ड किया।

साध्य-साधन के इस सिद्धांत तथा तात्कालिकता के सिद्धांत ने आधुनिक आदमी के हाथ में बेजोड़ शक्ति का हथियार दिया है। इस हथियार का इस्तेमाल दुनिया में अधिकाधिक होने लगा है। ट्यूनीशिया की स्वतंत्रता की ताकतें इसका इस्तेमाल कर रही हैं; दक्षिण अफ्रीका की अश्वेत जातियां इसका इस्तेमाल कर रही हैं। हमारे देश में भी इसका इस्तेमाल हुआ यद्यपि अस्थायी ग्रहण ने इस समय इसको परास्त कर दिया है। लेकिन हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि एक महान आदमी के विचारों और उसकी शिक्षाओं का मूल्यांकन इस बात से नहीं किया जाना चाहिए कि उनकी मृत्यु के दो-तीन साल बाद यहां क्या हुआ बल्कि इस बात से किया जाना चाहिए कि आगे पूरी सदी में तथा उसके आगे क्या हो सकता है। हमारे राजनैतिक और सामूहिक जीवन में हथियारों का प्रचलन होने से पहले दुनिया दो ही तरीके जानती थी, संसदीय पद्धति और विद्रोह। या तो संसद अन्याय का निराकरण करती थी या संसद के विफल होने पर, जन-समूह मोर्चाबंदी कर सत्ता को पराजित करता था। फ्रेडरिक एंगेल्स ने कहा था इतिहास जनता बनाती है और संसदें कुछ खास काम नहीं कर सकतीं। उनके अनुसार अंततः जनता को ही मोर्चाबंदी कर शासक को हटाना पड़ता है। जर्मनी की संसद के अनुभव के बाद लासेल की सोशल डेमोक्रेट पार्टी की सफलता के बाद एंगेल्स ने अपने मत में संशोधन किया और कहा कि संसदीय तरीके परिवर्तन के लिए काफी हो सकते हैं और क्रांतिकारियों के लिए बेहतर होगा कि वे संसद को परिवर्तन के अभिकरण के रूप में देखें। एंगेल्स के इस वक्तव्य में संसद और विद्रोह की; लोकतांत्रिक संवैधानिक जीवन और मोर्चाबंदी की तुलना की गई है। यूरोप का दिमाग इससे आगे की बात नहीं सोच पाया। गांधी जी ने दिखाया कि एक तीसरा विकल्प भी है।

मुझे लगता है कि संसद परिवर्तन का संतोषजनक अभिकरण हमेशा नहीं बनेगी और

मैं एंगेल्स के इस प्रतिक्रियावादी मत से सहमत नहीं हूं कि संसद क्रांति लाने में सक्षम है, विशेषकर वर्तमान दुनिया में जहां दो-तिहाई आबादी गरीबी और कष्टों में डूबी है, संसदीय रास्ता अक्सर नाकाफी होगा। भारत और उसकी तरह के अन्य देशों में जहां अर्धरोजगारी, छंटनी, भुखमरी और अकाल आदि से मौतें आम बात है, संसदीय रास्ते पर ही निर्भर रहना संसद को ही विफल करना होगा। यदि विशाल जनता यह मानने लगी कि देश की स्वस्थ राजनीति संसद पर ही निर्भर करती है तो वह जनता दूसरे रास्ते की तलाश में अस्वस्थ मानसिकता वाले राजनैतिक दलों की ओर भाग सकती है। यदि यह कहा जाएगा कि विधान सभाओं और संसद में कानून बनाने मात्र से उनकी सारी शिकायतें दूर हो जाएंगी चाहे ये शिकायतें बढ़ती कीमतों की हों या बढ़ती भुखमरी की और एकमात्र इलाज है पांच साल में एक बार चुनाव तो जनता का बड़ा समूह अपना धैर्य खो देगा; उसकी तकलीफें बढ़ती जाएंगी और वह अपना मानसिक संतुलन खो देगी तथा जब कोई ऐसी पार्टी या विचारधारा के लोग आगे आकर कहेंगे कि अब मोर्चाबंदी करो और यदि मोर्चाबंदी नहीं तो छुरा, एसिड बल्ब संभालो—क्योंकि यह अब नवीनतम फैशन है—या पिस्तौल-रिवाल्वर उठाओ, तो बड़ी संख्या में लोग उसकी तरफ चले जाएंगे या कम से कम उन तरीकों का स्वागत करने लगेंगे।

मैं आपको यह बताने की जरूरत नहीं समझता कि डाकू-लुटेरे जनता की प्रशंसा और प्यार जीत सकते हैं; मेरा मतलब भूपत और मानसिंह जैसे डाकुओं से है। वे शुद्ध रूप से डाकू, हत्यारे और लुटेरे हैं; फिर भी जब वे किसी इलाके में किसी संपत्ति को लूटते हैं तो 20 या 25 प्रतिशत माल गरीबों में बांट देते हैं और गरीब माता-पिता की बेटियों के ब्याह में मदद कर देते हैं, खास कर जहां दहेज की रस्म होती है, आदि आदि। यदि संसदीय और संवैधानिक उपाय ही एकमात्र कष्ट निवारण के उपाय बने तो मेरे मन में कोई संदेह नहीं है कि दो-तिहाई दुनिया, खासकर एशिया, ऐसी प्रणालियों और विचारधाराओं की तरफ भागेगी जो छुरे-एसिड बल्ब की हिंसा या विद्रोह पर विश्वास करते हैं। यहां महात्मा गांधी द्वारा सुझाया गया तीसरा रास्ता ही प्रभावकारी होगा। भूख या बड़े पैमाने की बर्खास्तगी आदि से पीड़ित जनता के लिए यह जरूरी नहीं है कि वह संसद पर निर्भर रहे या अगले चुनावों की प्रतीक्षा करे। उसके पास बेशकीमती और बेजोड़ हथियार सिविल नाफरमानी का रहेगा जब अन्याय और अत्याचार बर्दाश्त की सीमा से बाहर हो जाएगा। जब संवैधानिक उपाय कष्ट-निवारण के उपाय के रूप में असमर्थ सिद्ध होंगे तो जनता के पास अन्यायपूर्ण कानूनों और अत्याचारों के खिलाफ सविनय अवज्ञा या सिविल नाफरमानी का रास्ता खुला रहेगा।

कानून तोड़ना, जेल जाना और दंड को आमंत्रित करना, जिसमें मृत्युदंड भी हो सकता है हालांकि यह अच्छी बात नहीं है, परिवर्तन लाने का एकमात्र संतोषजनक रास्ता है। मैं मानता हूं कि कोई भी पार्टी या विचारधारा जो कुछ सार्थक काम करना चाहती है, उसे मरने के लिए तैयार रहना चाहिए; मृत्यु केवल शाब्दिक नहीं बल्कि जीवन की तरह ही एक सहज रास्ते के रूप में। उस क्षण में जब आदमी की मौत निश्चित होती है, उसे मौत बहुत बुरी नहीं लगती लेकिन किसी पार्टी की सार्थकता इस बात में होती है कि वह आदमी को ऐसा बनाए कि जब

उसे मरना चाहिए तब अगर वह मरने के लिए तैयार न हो तो उसे बहुत बुरा लगे। बहरहाल, महात्मा गांधी का राजनैतिक कर्म में यह विशिष्ट योगदान है।

विशाल जनता, व्यक्ति और व्यक्ति-समूहों के लिए कानून तोड़ने का रास्ता खुल गया है। मैं इस प्राथमिक चर्चा में नहीं जाऊंगा कि सत्याग्रह स्वतंत्रता की स्थिति में भी किया जा सकता है या नहीं, या क्या यह ब्रिटिश शासन के समय ही ठीक था। ये सब बचकाना बातें हैं। सत्याग्रह हथियार के रूप में तब तक रहेगा जब तक अन्याय और अत्याचार रहेगा और इसे रहना भी चाहिए क्योंकि यदि यह नहीं रहा तो गोली या बंदूक रहेगी। यह स्पष्ट विकल्प है जिसे भारत ने पिछले तीस वर्षों में दुनिया के सामने रखा है। सिविल नाफरमानी या गोली? विकल्प संसद और विद्रोह के बीच, गोली या वोट के बीच नहीं, जो एक जहरीला सिद्धांत है जिसे विद्वान लोग दुनिया के सामने रख रहे हैं। विकल्प है सत्याग्रह या गोली। वोट की अपनी जगह है। यह अपने क्षेत्र में सर्वोपरि है। लोग अपने वोट का इस्तेमाल करते हैं, अपनी इच्छा को अभिव्यक्त करते हैं और यह अभिव्यक्ति पांच साल के लिए वैध होती है। इस क्षेत्र में वोट को कोई चुनौती नहीं दे सकता। किंतु अन्याय और अत्याचार के मामले में, जब वे असह्य हो जाते हैं तो विकल्प गोली और सिविल नाफरमानी के बीच ही रहता है। यदि हमारी सदी अपने अवसान से पहले यह सबक सीख ले कि दुनिया के सभी भागों में, व्यक्तियों और समूहों के हाथ में सिविल नाफरमानी का अद्‌भुत हथियार है जिससे वे अपने अत्याचारी को परास्त कर सकते हैं तो हम एक नई सभ्यता का सूत्रपात कर रहे होंगे।

यह सच है कि सिविल नाफरमानी या सत्याग्रह को कई जीतें हासिल करनी होंगी तभी उसे गोली के मुकाबले प्रभावकारी सार्वजनिक हथियार के रूप में मान्यता मिलेगी। जब आपको दक्षिण अफ्रीका, ट्यूनीशिया या अमरीका के अश्वेतों का उदाहरण देता हूं जहां श्वेत और अश्वेत अन्यायी कानूनों को तोड़ रहे हैं, मैं यह स्वीकार करूंगा कि यह अधिकांशतः सुकरता की वजह से हो रहा है। किसी को यह नहीं मान लेना चाहिए कि ट्यूनीशिया या दक्षिण अफ्रीका के लोगों ने सिविल नाफरमानी की उपयोगिता को, अच्छी और नई सभ्यता के निर्माण की दृष्टि से समझ लिया है। वे इस हथियार का इस्तेमाल संभवतः इसलिए कर रहे हैं क्योंकि उनके पास और कोई हथियार नहीं है।

यह भी काफी है। 'एक कदम मेरे लिए काफी है।' वे लंबे संघर्ष के बाद यहां तक पहुंचे हैं। वे संभवतः नई दुनिया के निर्माण के लिए इसकी उपयोगिता भी देखने लगेंगे।

तात्कालिकता के इस सिद्धांत को सिविल नाफरमानी के हथियार तक सीमित नहीं रखा जाना चाहिए। यह आगे जाता है। यह अर्थशास्त्र और राजनीति तक जाता है और गया भी है; जहां तक गांधी जी का संबंध है। उन्होंने हमें दो संकल्पनाएं दी हैं। एक आत्मनिर्भर गांव की और दूसरी ग्राम स्वराज या ग्राम गणतंत्र की। ये दोनों संकल्पनाएं विकेंद्रीकरण पर आधारित हैं। आत्मनिर्भर गांव अपनी जरूरतों को कमोबेश खुद पूरा करेगा जिसके लिए चरखे जैसी मशीनों और औजारों पर निर्भर करेगा। ग्राम स्वराज की कल्पना भी प्रथम श्रेणी के लोकतंत्र को प्राप्त करने का प्रयोग है क्योंकि दुनिया में इस समय जो लोकतंत्र है वह दूसरी श्रेणी का

है। ग्रीक राजनैतिक विद्यार्थी एथेंस के गणतंत्र या दूसरे गणतंत्रों की याद कर सकता है जहां प्रथम श्रेणी का लोकतंत्र था, कम से कम जहां तक नागरिकों का संबंध था। मेरा विचार है कि इस तरह का लोकतंत्र हमारे देश में या अन्य जगहों पर भी, पुराने जमाने में रहा होगा किंतु आमतौर पर ग्रीक का उदाहरण ही दिया जाता है। यह प्रथम श्रेणी का लोकतंत्र था जहां जनता राजनीति में सीधे भाग लेती थी और बिना किसी प्रतिनिधि के अपने को शासित करती थी। प्रतिनिधि हमेशा अवांछनीय नहीं होते। कुछ प्रतिनिधि विख्यात रूप से अच्छे व्यक्ति हो सकते हैं। तथापि, यदि आप अपने द्वारा चुने गए व्यक्ति के माध्यम से शासित होते हैं तो यह प्रत्यक्ष लोकतंत्र नहीं होगा, यह परोक्ष या अप्रत्यक्ष लोकतंत्र ही होगा। और यदि प्रत्यक्ष लोकतंत्र सीमित क्षेत्रों में और सीमित विषयों के लिए भी लागू होगा तो यह बड़ी उपलब्धि होगी। गांधी जी ने आत्मनिर्भर गांव और स्वायत्त गांव गणतंत्र की कल्पना रखी ताकि जनता अपने भाग्य का खुद फैसला कर सके। अपना शासन खुद चला सके, अपनी अर्थव्यवस्था को खुद ठीक कर सके और उसे मध्यस्थ की या बाहरी हस्तक्षेप की जरूरत न पड़े। मैंने अति सामान्यीकरण किया है। इस तरह की स्थापना के संदर्भ में, स्वभावतः गांधी जी के कई ऐसे कथनों को ढूंढ़ा जा सकता है जो इसके खिलाफ जाएं। उदाहरण के लिए, गांधी जी ने जटिल मशीनों का समर्थन किया है। उन्होंने हवाई जहाज, रेल इंजिन, रेल उद्योग आदि का समर्थन किया है। उनके ऐसे कथनों को भी ढूंढ़ा जा सकता है जो मेरे द्वारा कही गई बातों की वैधता को स्वीकार न करें। लेकिन जैसा कि मैंने कहा मैंने उनके विचारों और कार्यों का सामान्यीकरण किया है जिसका महत्व है, न कि उन विशिष्ट कथनों का जो उन्होंने मशीनों या प्रतिनिधि सरकार के बारे में कभी कहे हों।

उनके मन के सामान्य निर्देशों के बारे में निस्संदेह कहा जा सकता है कि वे आत्मनिर्भर गांव और ग्राम-स्वराज की ओर जाते हैं। इन्हें नए विश्व के निर्माण की प्रणाली या विचारधारा से कैसे जोड़ा जा सकता है? इसमें बड़ी कठिनाई है क्योंकि मुझे नहीं लगता कि वर्तमान दुनिया अपने सारे दोषों के साथ, हमें ऐसी नई दुनिया बनाने देगी जिसमें उसके सारे औजारों को तिलांजलि देने की बात हो। यहां औजारों का आधिक्य है। आदमी औजारों का गुलाम बन गया है। इस तथ्य को स्वीकार करना होगा। यूरोप और अमरीका का आधुनिक आदमी अधिकतर और अपनी जिंदगी के बड़े हिस्से गें अपना जीवन जीने के लिए इतना प्रयास नहीं करता जितना उन चीजों को पाने के लिए जिन्हें वह हासिल करता है। रेडियो, कार, टेलीविजन, वैक्यूम क्लीनर आदि वस्तुएं आधुनिक व्यक्ति या गृहिणियों के गुलाम नहीं, ये आदमी और गृहिणियां अपनी वस्तुओं के गुलाम हैं। यह एक विचित्र बात लग सकती है क्योंकि हम भारत में इन वस्तुओं का इस्तेमाल नहीं करते और जो लोग अच्छी वस्तुएं नहीं पा सकते, यह नहीं मान सकते कि जिन लोगों के पास वस्तुएं बहुत अधिक मात्रा में होती हैं वे उनसे तंग आ जाते हैं। मैं एक क्षण के लिए भी यह नहीं कहूंगा कि भारत या भारत जैसे दूसरे देशों के लोग इन वस्तुओं को प्राप्त न करें। उन्हें इसके प्रयत्न करने पड़ेंगे यदि रहन-सहन का सम्मानजनक स्तर प्राप्त करना है। लेकिन जो लोग पिछले तीन सौ सालों से रहन-सहन के स्तर में सतत वृद्धि की

बात सोचते रहे हैं वे अब ऐसी स्थिति को पहुंच गए हैं जहां वे इन चीजों के मालिक नहीं रह गए हैं बल्कि चीजें ही उनकी मालिक बनती जा रही हैं। अमरीका की एक जनसभा में कुछ लोगों ने इस बात को लेकर मेरी टांग खींचने की कोशिश की लेकिन जब मैंने गृहिणियों के बारे में कहा कि वे अपने घर की चीजों की गुलाम बन गई हैं तो मैंने देखा कि इस बात पर खूब तालियां बजीं।

औजारों की संख्या बहुत अधिक हो गई है लेकिन उन्हें बिल्कुल खत्म करने से जो स्थिति बनेगी, उसमें चरखा मर चुका होगा और मर रहा होगा, भले ही आज वह एक विशेष दिन पर जैसे स्वतंत्रता दिवस पर समारोह की वस्तु बनता है जब राष्ट्रपति सार्वजनिक पार्क में सैकड़ों अथवा हजारों व्यक्तियों के साथ चरखा कातते दिखाई देते हैं। अतः यह न तो तर्क-संगत होगा और न उपयोगी कि हम आत्मनिर्भर गांव और चरखे के गीत गाते रहें और साथ-साथ कपड़े, सीमेंट आदि के बड़े-बड़े कारखाने बनाते रहें। आज भारत के लोगों के सामने ठीक यही स्थिति है। ग्राम-उद्योग भी इसी खतरनाक स्थिति की ओर बढ़ रहे हैं क्योंकि जब गांधी के भारत की संविधान सभा भारत का संविधान बनाने के लिए बैठी तो उसके सामने तीन सौ से अधिक धाराएं थीं जिनका संबंध शक्तियों के विभाजन से था। यह विभाजन दिल्ली और हैदराबाद के बीच, राष्ट्रपति और राज्यपाल के बीच, संसद और विधान सभाओं के बीच आदि होना था। लेकिन इस सभा के पास ग्राम स्वराज, ग्राम गणतंत्र आदि पर विचार करने के लिए समय नहीं था और अंतिम समय पर ही किसी को सूझा कि गांधी जी की बुनियाद को तो भुला ही दिया गया और तब यह सुझाव दिया गया ग्राम-शासन के संबंध में भी कोई प्रावधान शामिल किया जाए। कोई भी विद्यार्थी भारत के संविधान को पढ़कर यह देख सकता है कि 392 अनुच्छेदों में से केवल एक अनुच्छेद में यह कहा गया कि ग्राम-शासन जरूरी है। यह क्या है, कैसे बनेगा, इसके पास क्या अधिकार होंगे, इसका कुछ उल्लेख नहीं। ग्राम-स्वराज्य या ग्राम-शासन को मात्र समारोह की वस्तु बनाया गया और वह भी काम पूरा होने के बाद सूझे विचार के रूप में। यह स्थिति है जहां मन अपने को झकझोरेगा और पाएगा कि वह गांधी जी द्वारा रखे गए किसी विशिष्ट समाधान से संतुष्ट नहीं है। महत्व उनके निर्देश का ही है। यह निर्देश है विकेंद्रीकरण का, अर्थव्यवस्था और राजनैतिक ढांचे दोनों का विकेंद्रीकरण।

इस सिद्धांत का समाजवादी प्रयोग कैसे होगा? इसके लिए हमें जिन औजारों का इस्तेमाल करना पड़ेगा, वे जरूरी नहीं, इस वक्त प्रचलित औजार होंगे। हमें नए औजार का आविष्कार और निर्माण करना पड़ेगा। जहां तक राजनैतिक सत्ता के विकेंद्रीकरण का संबंध है, यह सिद्धांत तुरंत बनाया जा सकता है कि देश की एकता और अखंडता के अनुरूप अधिक से अधिक शक्तियां गांवों या शहरों को दी जाएं। इस सिद्धांत को एक ही बार में ब्यौरेवार प्रस्तुत करना शायद संभव न हो और हो सकता है, शेष बची सदी में यह पूरी तरह बने। यदि इस बात को मान्यता मिल जाए कि अपने गांव में रह रहे व्यक्ति को प्रत्यक्ष लोकतंत्र के तहत इतने अधिकार मिल जाएं कि वह अपने भाग्य का खुद निर्णय कर सके तो इस सिद्धांत को लागू माना जाएगा। किसी भी समाजवादी विचारधारा को अर्थव्यवस्था तथा राजनैतिक प्रशासन में,

तात्कालिक सुलभता पर विचार करना पड़ेगा; चरखे या ग्राम स्वराज के संदर्भ में ही जरूरी नहीं, छोटी इकाई की मशीनों के संदर्भ में भी जिन पर भारी पूंजी की आवश्यकता नहीं होगी और स्वायत्त ग्राम-प्रशासन के संदर्भ में भी। मैंने जानबूझ कर 'स्वायत्त' शब्द का प्रयोग किया है, 'स्वाधीन' का नहीं। आत्मनिर्भरता की कल्पना को छोड़ना बेहतर होगा। गांव का दूसरे अनेक गांवों तथा विश्व से भी निकट संबंध बना रहना चाहिए। इसीके साथ राजनैतिक शक्तियों के विभाजन में भी लचीलापन रहना चाहिए ताकि देश की अखंडता के अनुरूप उसमें समय-समय पर विस्तार किया जाता रहे।

मुझे आप लोगों को यह बताने की जरूरत नहीं कि आधुनिक औजार इतने जटिल हो गए हैं कि वे लोकतंत्र के सिद्धांतों के खिलाफ जाते हैं और इन्होंने जिस सभ्यता का निर्माण किया है वह कुछ प्रेरकों पर निर्भर है जैसे रहन-सहन के स्तर की सतत वृद्धि और उत्पादन की सतत वृद्धि की कल्पना। पिछले 300 वर्षों की इस आधुनिक सभ्यता को पहले की तमाम सभ्यताओं से कुछ बातों में अलग किया जा सकता है। पहली, प्रत्येक आधुनिक मनुष्य अधिकाधिक महंगा मकान, वस्त्र या फर्नीचर चाहता है। इस तरह की मांग के बने रहने से कुल उत्पादन में वृद्धि होती रहती है। इस उत्पादन के अन्य औजार बनते जाते हैं और वे उत्पादन को बढ़ाते जाते हैं। यह सब विज्ञान और प्रौद्योगिकी के इस्तेमाल और कई प्रकार के आविष्कारों से होता है। यह साफ तथ्य है कि ये प्रेरक-शक्तियां सारी दुनिया में उपलब्ध नहीं हो सकतीं। दो-तिहाई दुनिया के लिए इनका कोई उपयोग नहीं है जहां इन्हें लोगों पर जबरदस्ती लादा गया है जिसका परिणाम इन देशों के भौतिक और नैतिक विकास का रुक जाना हुआ है।

अतः इसके विस्तार में जाने का कोई लाभ नहीं होगा और मैं कहूंगा कि हम जो भारत बनाने की कोशिश कर रहे हैं, वह भिन्न स्वरूप का होगा। सतत बढ़ते उत्पादन के स्थान पर हमें सम्मानजनक जीवन-स्तर को अपना लक्ष्य बनाना चाहिए। देश की सीमाओं के भीतर व्यक्ति की इच्छाओं में सतत वृद्धि के स्थान पर हमें कोशिश करनी चाहिए कि मनुष्य सारी दुनिया के लिए जो सुविधाएं वांछित हों उन्हें प्राप्त करे। गांधी जी का जीवन और उनके कार्य इसमें हम सबके लिए बहुत उपयोगी होंगे बशर्ते कि उनके कामों को ठीक प्रकार से समझा जाए। कार्य की यह दिशा स्वतंत्र होगी लेकिन वह उसी तरफ होगी जिस तरफ गांधी चाहते थे। मुझे इस बात की ज्यादा चिंता नहीं कि हम इस दिशा में महात्मा गांधी के लेखों-कथनों से सिद्ध कर सकते हैं या नहीं। इसका बड़ा महत्व नहीं होगा, जब तक हम इस बात को समझेंगे कि आधुनिक विश्व सिद्धांतहीन है और आज के रूसी और अमरीकी भले ही दो विपरीत प्रणालियों से जुड़े हों, दोनों ही पाशविक प्रेरणाओं से चालित होकर अपने देश की सीमा में अपनी सुविधाएं बढ़ाने के लिए लड़ रहे हैं। इसके स्थान पर समाजवादियों को दुनिया के समक्ष सारी दुनिया के लिए सम्मानजनक जीवन-स्तर के तीन कार्यक्रम रखने होंगे।

समाजवाद खुली विचारधारा है जबकि पूंजीवाद और साम्यवाद की विचारधाराएं बंद हैं। नई दुनिया को सारी मानव-जाति के लिए सम्मानजनक जीवन-स्तर उपलब्ध कराने की कोशिश

के लिए तैयार रहना चाहिए। मेरा विचार है कि आज का सर्वाधिक महत्वपूर्ण विचार है सम्मानजनक जीवन-स्तर बजाय सतत समृद्धि के।

अब मैं गांधी जी के कुछ और पहलुओं की चर्चा करूंगा किंतु संक्षेप में। उनकी मृत्यु के बाद इतनी जल्दी ग्रहण लग गया। मुझे उम्मीद है कि यह ग्रहण अस्थायी होगा। उनके नाम का समारोह के तौर पर उल्लेख तथा स्मारकों का निर्माण आदि बहुत हो रहा है। जहां तक उनकी शिक्षाओं के प्रभाव की बात है वह उनकी मृत्यु के बाद नहीं रहा, अथवा तुलनात्मक रूप में नहीं के बराबर है। इसका कारण क्या है? क्या गांधीजी ने जो कहा या लिखा उसमें कमी थी? शायद हो, और यदि यह सच है तो आज के लोगों को ही उनके कामों के लिए दोष देने का कोई लाभ नहीं होगा।

मुझे लगता है किं गांधीजी ने जीवन के भौतिक और आर्थिक आधार की तरफ पर्याप्त ध्यान नहीं दिया। मैं इन शब्दों का प्रयोग वैज्ञानिक अर्थ में कर रहा हूं। उन्होंने वह भय नहीं झेला जो शरीर की प्रबल चेतना का फल होता है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि शरीर को स्वच्छ रखना उनकी प्रथम चिंता थी और जो भी उनका अनुसरण करना चाहता है उसे उन उदाहरणों का अध्ययन करना चाहिए। गांधीजी ने भोजन, वस्त्र, स्त्री-पुरुष संबंधों आदि के बारे में भी कई अजीब बातें कहीं। इसके साथ-साथ उन्होंने अपने सहयोगियों की आदतों में परिवर्तन लाने की भी कोशिश की और निस्संदेह वे कई देशवासियों को प्रभावित करने में सफल हुए। वे हमेशा सोचते थे कि भारत के लोगों के शरीर कैसे स्वस्थ रह सकते हैं। उन्होंने यह भी कहा कि वे चाहते हैं उनके कुछ ही अनुयायी हों जो उनकी बातों को निष्ठापूर्वक अपने जीवन में उतारें बजाय इसके कि उनके बहुत अनुयायी हों जो उनकी बातों के प्रति उदासीन हों। शरीर की ओर उसे शुद्ध रखने की अत्यधिक चिंता के साथ-साथ उनमें शरीर को नकारने या कम से कम उसे तुच्छ बनाने की स्पष्ट प्रवृत्ति थी। ऐसा लगता है कि शारीरिक शुद्धीकरण और तुच्छीकरण तथा आर्थिक शुद्धीकरण एवं तुच्छीकरण एक-दूसरे का स्थान ले लेते हैं।

जब से *कठोपनिषद* ने प्रेय और श्रेय का द्वैत प्रस्तुत किया है, संभवतः विचार के क्षेत्र में पहली बार, तब से ही भारत के विचारशील लोग इस समस्या से जूझते रहे हैं और उनमें से महानतम व्यक्तियों की सामान्य दिशा पहले उत्तर की ओर ही रही है। प्रेय को श्रेय के लिए कुर्बान किया गया। गांधी जी ने कुल मिलाकर यही किया। उनकी कठोर सादगी और कुछ-कुछ उनके जीवन के सूनेपन तथा सामाजिक मान्यताओं के पक्ष में तर्क दिए जा सकते हैं। उनके जीवन और भारत जैसे गरीब देश के लोगों के जीवन के बीच सादगी के स्तर पर ही शायद पूर्ण एकात्मता पाई जा सकती है। यदि भारत की स्थितियां कुछ बेहतर समृद्धता की होतीं तो शायद एकात्मता का स्तर भिन्न होता।

तथापि, गांधी जी की सादगी में सर्वोच्च दर्शन के तत्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। वे स्वर्ण, संगीत, प्रेम या उस चीज का जिसे बढ़ता आर्थिक स्तर कहा जा सकता है, शैतान से तालमेल नहीं बिठा सके। अपने पूर्वज मनीषियों की तरह उन्होंने भी भौतिकता को अस्वीकार किया या उसे अति तुच्छ दर्जा दिया। इस बात पर संदेह हो सकता है कि क्या

भौतिक और आध्यात्मिक, प्रेय और श्रेय, सुंदर और सत्य का परस्पर मेल हो सकता है सिवाय किसी परिभाषा के चमत्कार के जिसके अनुसार एक-दूसरे में जज्ब हो जाए। इसके अतिरिक्त भौतिकता की शैतानी प्रकृति और गत्यात्मक शक्ति के मद्देनजर इनके बीच सतत संतुलन की संभावना को भी अस्वीकार किया जा सकता है। एक अमरीकी पूर्व स्नातक ने मुझसे पूछा था कि एक बार भौतिक सांड को सींगों से पकड़ने के बाद हम उसे कैसे छोड़ सकते हैं? यदि भौतिक को स्थायी रूप से नियंत्रित रखा जाना है तो हम तनाव मुक्त अस्तित्व कैसे बनाए रख सकते हैं? इस सवाल ने मुझे तब निरुत्तर कर दिया; अब भी मेरे पास इसका कोई उत्तर नहीं है सिवाय जीवन की इच्छा और प्रयोग की प्रवृत्ति के।

एडम स्मिथ और ट्रूमैन या कार्ल मार्क्स और स्टालिन ने जीवन की जिस मुख्य धारा की रूपरेखा दी उसने उन्हें आदमियों के मस्तिष्क और देह को काबू में करने की शक्ति दी। जब गांधी जी जैसे लोग प्रचलित प्रवृत्तियों और विषयों से बहुत दूर जाकर ऐसे समाधान प्रस्तुत करते हैं जो मनुष्यों को स्वीकार नहीं होते तो वे अपने को साल में एक बार या 24 घंटे में आधे घंटे की समारोही यादगार के स्तर पर सीमित कर लेते हैं। गांधीजी का नाम समारोही यादगार में बदल चुका है। उनकी उपस्थिति पुस्तकालयों की संदर्भ सामग्री में कॉलेज-कक्षों और सार्वजनिक भाषणों तक सीमित हो गई है। किंतु राष्ट्रीय जीवन की मुख्य धारा महात्मा गांधी, उनके कामों तथा उनकी शिक्षाओं की तरफ ध्यान दिए बिना बह रही है। उनके अधिकांश अनुयायी उदार बन गए हैं और हृदय-परिवर्तन के श्रम की कमाई का मजा ले रहे हैं। उन्हें सताए हुए दिलों में साहस भरने की आवश्यकता महसूस नहीं होती। उन्हें अत्याचारी और शोषणकर्ता के हृदय-परिवर्तन की सुविधाजनक गतिविधि ही सबसे आसान काम लगता है। उनकी जीवन-शैली आसानी से पूंजीवाद, उदारवाद, मिश्रित अर्थव्यवस्था या सनातनी किस्म के सुधारवादी समाजवाद के प्रचलित दृष्टिकोण से मेल बिठा लेती है। उनके जो कुछ ज्यादा अतिवादी अनुयायी हैं उन्होंने कार्ल मार्क्स के विचारों को गले लगा लिया है। उन्होंने भी गांधी जी के सच्चे-क्रांतिकारी विचारों को छोड़ दिया है; उन विचारों को जो उन्हें सिविल नाफरमानी, ग्राम स्वराज और नियंत्रणीय औजारों की तरफ ले गए। उन्होंने जनता और नेता के बीच एकात्मता की गांधी जी की प्रबल चाह को बनाए रखने की कोई कोशिश नहीं की और यद्यपि उनके टकराव के तरीके निर्बाध चल रहे हैं उन्होंने वर्तमान सभ्यता की प्रेरणाओं तथा प्रौद्योगिकी के प्रति साम्यवादी भक्ति-भाव ग्रहण कर लिया है। प्रसंगवश, यह भक्तिभाव पूंजीपति का भी है।

इसके परिणामस्वरूप हमारे सामने गांधी के उप-उत्पादों के रूप में तीन किस्म के लोग हैं—संत टाइप के गांधीवादी, पूंजीवादी और साम्यवादी गांधीवादी। सदियों से जड़ता-ग्रस्त भारत को अर्थव्यवस्था और प्रशासन की ऐसी प्रणाली बनाने की कोशिश करनी चाहिए जिसमें महात्मा की स्थापनाओं को कारगर सिद्ध किया जा सके। अन्यथा गांधीवाद चरखा कातने तक सीमित रह जाएगा और ग्राम-गणतंत्र अस्तित्व में नहीं आएगा।

बड़े-बड़े कारखाने खड़े किए जाएंगे और जनता का बड़ा हिस्सा सतत बढ़ते जीवन-स्तर की सोच अपना लेगा। भारत, रूस और अमरीका की कमजोर नकल बन कर रह जाएगा।

वर्तमान सभ्यता को एक और मंच मिल जाएगा। किंतु यदि गांधीजी की स्थापनाओं को आर्थिक और प्रशासनिक प्रणाली में ढालने की कोशिश की जाएगी तो भारत के लिए एक नई सभ्यता का निर्माण करना संभव हो जाएगा। सारे विश्व के समाजवाद, विशेषकर भारत के समाजवाद पर यह दायित्व है।

अब तक जो प्रणालियां विकसित हुई हैं, समाजवाद भी इसका अपवाद नहीं है, वे व्यक्ति का अच्छा बनना अनावश्यक कर देंगी। संक्रांतिकालीन व्यक्ति को आवश्यक समायोजन करने के लिए सिर्फ वक्त की जरूरत होगी। हमारा काम ऐसी प्रणाली को विकसित करना है जिसमें व्यक्ति के लिए अच्छा बनना न केवल संभव हो बल्कि आवश्यक भी हो। पूंजीवाद और साम्यवाद दोनों ने विश्व के समक्ष विचार और कर्म की कुछ ऐसी प्रणालियां रखी हैं जिनमें सभी स्वमेव अच्छे बन जाएंगे। किसी के लिए अच्छा बनने की कोशिश करना आवश्यक नहीं होगा। सारी दुनिया के संतों की यही विशेषता रही है। प्रणालियों पर काम करना, उन्हें कागज पर ब्योरेवार उतारना और फिर उनके अनुसार समाज को बदलने की कोशिश करना, इतना ही इन संतों के लिए काफी रहा किंतु वे हमेशा विफल हुए। जरूरत इस बात की है कि किसी व्यक्ति के जीवन के सार का लाभ उठाया जाए और फिर उसे ऐसी प्रणाली में बुना जाए जिसमें अच्छा बनना संभव भी हो और व्यक्ति अच्छा बनने के लिए सतत प्रयास भी करे। समाजवाद अब तक ऐसी प्रणाली रहा है जिसमें इस तरह की आवश्यकता पैदा नहीं हुई, जिसमें परिस्थितियां ही महत्वपूर्ण थीं; जिनमें कानून, सरकार और प्रशासन में परिवर्तन करना ही व्यक्ति को अच्छा बनाने के लिए काफी था। इस बुराई को समाजवाद ने साम्यवाद और पूंजीवाद के साथ शेयर किया है। मैंने जानबूझ कर इसे बुराई कहा है, पर्यावरणवाद की बुराई, जहां पर्यावरण या परिवेश का ही महत्व होता है और पर्यावरण में सुधार होने से व्यक्ति में स्वतः ही सुधार हो जाता है।

संभव है, महात्मा गांधी ने व्यक्ति पर जरूरत से अधिक जोर और पर्यावरण पर जरूरत से कम जोर दिया हो। लेकिन यह भी समझ लेना चाहिए कि समाजवाद ने पर्यावरण पर जरूरत से ज्यादा जोर दिया है और व्यक्ति पर जरूरत से कम। यदि विचार की तर्क-संगत प्रणाली बनानी हो तो दोनों पर समान जोर देना पड़ेगा क्योंकि आदमी साधन भी है और साध्य भी और यद्यपि वह शाश्वत गुणों का प्रतिपादन करता है उसे परिवर्तन का औजार भी बनना चाहिए। निष्कर्ष के रूप में मैं कहूंगा कि आज ऋषि और संत को एक करने की आवश्यकता है।

समाजवाद का वास्ता अधिकतर ऋषि से रहा जो पर्यावरण का अध्ययन कर अच्छे संगठन के सिद्धांतों की खोज करता है। संत ने जीवन की अच्छी विशेषताओं और भौतिकता के अस्वीकार पर जोर दिया है। हममें से प्रत्येक में ऋषि और संत के गुण छिपे हैं। किंतु ऋषि के गुणों की विकृति क्रूरता की बुराई में और संत के गुणों की विकृति संकीर्णता की बुराई में हो रही है। ऋषि और संत दोनों संकीर्ण और क्रूर बन गए हैं। ऋषि क्रूर बनता है जब वह उनसे घृणा करने लगता है जिन्हें वह अपनी सोच का नहीं बना सकता। संत संकीर्ण तब बनता है जब वह मानता है कि अपने को अच्छा और शुद्ध बनाने जैसा और कोई काम नहीं है। क्रूरता और संकीर्णता के बीच अंतर बहुत कम है। यदि महात्मा गांधी के जीवन और कार्यों से कोई

शिक्षा ग्रहण की जा सकती है तो वह यह है कि हममें से प्रत्येक को सत्याग्रह, ऋषिपन और संतपन के छिपे गुणों को बाहर लाने की कोशिश करनी चाहिए। हमें संतपन से नहीं घबराना चाहिए। देह के नकार की इच्छा न करना लगभग हमेशा ही संतपन का नकार होता है और यह बुरी बात है। ज्ञान और अच्छा आचरण, पर्यावरण-परिवर्तन और व्यक्ति-परिवर्तन, क्रांति और धर्म, सामाजिक पुनर्निर्माण और नैतिक उत्थान, मन की शिक्षा और आदतों का प्रशिक्षण, ये सब अभी तक विरोधी ध्रुव जैसे रहे हैं क्योंकि आदमी की लाइलाज बीमारी भिक्षु-जीवन की तरफ झुकाव रही है। महात्मा गांधी अपने जीवन में ऋषि और संत के गुणों का समावेश कर पाए बिना किसी एक तरफ के झुकाव के, यह प्रश्न अधिक महत्व का नहीं है। मनुष्यों के नेता के रूप में वे विश्व के एकमात्र व्यक्ति थे जो राजनैतिक और सामाजिक ढांचे के क्रांतिकारी भी थे और आंतरिक दुनिया तथा आचरण के भी। कुछ व्यक्तियों ने गांधी और मार्क्स के कुछ-कुछ प्रभाव लेकर सिद्धांत की रस्सी बुनने के बौद्धिक व्यायाम अक्सर किए हैं। यह ऐसा काम है जो मेरी समझ में बिल्कुल व्यर्थ है जिसका कोई परिणाम नहीं निकलता। लेकिन यदि एक सुसंगत कपड़ा बुना जा सके जिसके धागे भले ही कहीं से लिये गए हों लेकिन बुनने वाले का एकमात्र लक्ष्य ऐसा पर्यावरण बनाना हो जिसमें व्यक्ति चाहे तो अच्छा बन सकता है तो मुझे यकीन है कि सिविल नाफरमानी के अद्वितीय हथियार के साथ उस सिद्धांत को समाजवाद में शामिल किया जा सकता है और इससे मानव-जाति का बड़ा लाभ हो सकता है। गांधीवाद की पृथक विचारधारा मेरे विचार से विश्व के किसी बड़े काम की नहीं होगी। समाजवाद विश्व-मंच पर पहले से ही विद्यमान है।

विचारधारा अब भी खुली है। इससे उम्मीद बनती है और यदि गांधी जी के जीवन तथा कार्यों की कुछ बातें समाजवाद के सुसंगत वस्त्र में बुनी जाएं तो एक नई सभ्यता का उदय हो सकता है और मानव जाति शांति तथा सम्मानजनक जीवन के युग की उम्मीद कर सकती है।

– 1952, अगस्त; भाषण, हैदराबाद